योगीन्द्र युगप्रधान दादा श्रीजिनदत्तसूरि

[स्वर्गीय उपाध्याय मुनि श्री सुखसागरजी महाराज]

किसी भी राष्ट्र की वास्तविक सम्पत्ति है उस देश की सन्तपरम्परा, जिसमें उसकी आत्मा साकार दीखती है। इसलिए संत को हम इस देश की परम्परा का जीवित प्रतीक मान लें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। एक संत जीवन का अन्त:परीक्षण या विहंगावलोकन उस समय के सम्पूर्ण मानवीय विकासात्मक परम्पराओं के तलस्पर्शी अनुशीलन पर निर्भर है। आचार्य श्री जिनदत्तसूरि उपर्युक्त परम्परा के एक ऐसे ही उदारचेता व्यक्तित्व-संपन्न महापुरुष हैं। आचार्य श्री बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी के महापुरुष थे। तत्कालिक संतों में साहित्यिकों एवं तत्व-विदों में इनका स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है।

क्रान्ति उनके जीवन का मूलमन्त्र था। जिनदत्त-सूरिजी एक ऐसी विद्रोहात्मक परम्परा के उद्घोषक थे जिन्होंने क्रान्ति के जयघोष द्वारा अतीत से प्रेरणा लेकर भविष्य की शुद्ध परम्परा की नींव डाली। यह उनके प्रखर व्यक्तित्व का ही प्रभाव था कि तात्कालिक विकृति-मूलक परम्पराओं का परिष्कार एवं सांस्कृतिक सूत्रमें आबद्ध कर जैनधर्म एवं मुनि समाज पर आयी हुई विपत्तियों का कुशलतापूर्वक सामना किया। जैन-संस्कृति के नवयुग प्रवर्त्तकों में ऐसे महापुरुष की गणना होती है। श्री जिनदत्तसूरिजी सत्याश्रित-खरतरगच्छीय परम्परा के एक ऐसे सुदृढ़ स्तंभ थे, जिन्होंने अपने व्यक्तित्व, साधना और प्रकाण्ड पाण्डित्य के बल पर समाज में जो श्रद्धा का स्थान प्राप्त किया है, वह आज भी अमर है।

इनका जन्म गुजरात प्रान्तीय धवलकपुर (धोलका) नामक ऐतिहासिक नगर में हुँबड़ जातीय श्रेष्ठिवर्य वाछिग की धर्मपत्नी वाहड़देवी की रत्नकुक्षि से सं० ११३२ में हुआ था। सुविहित मार्ग प्रकाशक श्रीजिनेश्वरसूरिजी के विद्वान शिष्य धर्मदेव उपाध्याय की आज्ञानुवर्तिनी आर्याओं का वहाँ पर आगमन हुआ। शुभ लक्षण युक्त तेजस्वी बालक को देख पुलकित मन से माता को विशेष रूप से धर्मोपदेश देकर शासन-सेवा के प्रति उसमें वातावरण को तैयार हुआ जानकर सूचित पुत्र को गुरु महाराज की सेवा में समर्पित करने की याचना की। जहाँ व्यक्ति-व्यक्ति के रूपमें जीवन व्यतीत करना है वहाँ स्वार्थ पनपता है। जहाँ व्यक्ति समष्टि के लिए जीवनोत्सर्ग करता है वहाँ वह अमर हो जाता है। वाहड़देवी को अपने पुत्र को गुरु-समर्पित करते हुए तनिक भी दु:ख नहीं हुआ अपितु हर्ष हुआ। उसने सोचा कि एक पुत्र यदि संस्कृति की विकासात्मक परम्परा को बल देता है और सारे समाजकी सांस्कृतिक गौरव गरिमा की रक्षा व वृद्धि के लिए कठोरतम साधना स्वीकार करता है तो इस बात से बढ़कर और सौभाग्य की बात हो ही क्या सकती है? कालान्तर से धर्मदेवोपाध्याय धवलकपुर पधारे और इसे दीक्षित कर सोमचन्द्र नाम से अभिषिक्त किया। विकास के लक्षण बाल्यकाल से ही अंकुरित होने लगते हैं। विद्याध्ययन के क्षेत्र में इनकी प्रतिभा का लोहा अध्यापक वर्ग भी मानते थे। इनकी बड़ी दीक्षा अशोक-चन्द्राचार्य के करकमलों द्वारा सम्पन्न हुई जो कि जिनेश्वरसूरि के शिष्य सहदेवगणि के शिष्य थे। हरिसिंहाचार्य के श्रीचरणों में बैठकर आपने सैद्धान्तिक वाचना प्राप्त कर कई मंत्रादि पुस्तकों के साथ ऐसा ऐतिहासिक प्रतीक प्राप्त किया जो आचार्यवर्य के विद्याध्ययन में काम आता था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीजिनवल्लभसूरिजी के स्वर्गवास के बाद उनके पदपर देवभद्राचार्य ने सोमचन्द्र गणि को सं० ११६९ वैसाख कृष्ण ६ शनिवार को चितौड़ के वीरचैत्य में प्रतिष्ठित किया और उनको श्री जिनदत्तसूरि नाम से अभिषिक्त किया।

श्रीजिनदत्तसूरि में श्रीजिनवल्लभसूरिजी के कुछ गुणों का अच्छा विकास पाया जाता है। वे अनागमिक किसी भी परम्परा के विरुद्ध शिर ऊँचा करने में संकुचित नहीं होते थे। आयतन अनायतन जैसे विषयों का स्पष्टीकरण इन तथ्यों को स्पष्ट कर देता है।

आचार्य श्रीजिनदत्तसूरिजी के मन में आचार्य पद पर प्रतिष्ठित होते ही एक बात की चिन्ता उन्हें लगी कि अब शासन का विशिष्ट प्रभाव फैलाने के लिए मुझे किस ओर जाना चाहिए। आचार्य के हृदय में यदि विराट और प्रशस्त भावना न जगे तो उसमें विश्वकल्याण को छोड़कर स्वकल्याण की कल्पना भी असम्भव है। आचार्यवर राजस्थान की ओर प्रस्थित हुए। आप क्रमशः अजमेर पधारे। यहां के राजा अर्णोराज ने आपको उचित सम्मान दिया। श्रावकों की विशेष प्रेरणा व महाराज के सदुपदेश से उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक दक्षिण दिशा की ओर पर्वत के निकट देवमन्दिर बनवाने की भूमि प्रदान की। अर्णोराज आपको बहुत श्रद्धा की दृष्टि से देखता था। अम्बड़श्रावक की आराधना द्वारा अम्बिकादेवीने आपको युगप्रधान महापुरुष घोषित किया था।

युगप्रवर के अद्भुत कार्य

यों तो आपने अपने कर्मक्षेत्र में अधिकतर मनुष्यों को सत्पथ पर लाने का सुयश प्राप्त किया, पर आपका सुकुमार हृदय अनुकम्पा से ओत-प्रोत होने के कारण एक लाख तीस हजार से भी अधिक व्यक्तियों को अपनी तेजोमयी औपदेशिक वाणी से हिंसात्मक वृत्तियों का परित्याग करवा जैन धर्म में दीक्षित किया। ये मनुष्य विभिन्न जातियों के थे, कर्ममूलक संस्कारोंमें विश्वास करने वाली जैन परम्परा के लिए जातिवाद का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होना चाहिए। क्योंकि वर्णव्यवस्था के विरोध में ही सम्पूर्ण श्रमणपरम्परा का शताब्दियों से बल लग रहा है।

जिनदत्तसूरिजी जैसे युगपुरुष के प्रखर व्यक्तित्व का ही प्रभाव था कि चैत्यवासियों का प्रचण्ड विरोध होते हुए भी नूतन चैत्य-निर्माण की पुरातन परम्परा को संभाले रखा। आचार्यश्री ने इतने विराट समुदाय को न केवल शांतिमार्ग का उपासक ही बनाया अपितु उनके लिए समुचित सामाजिक व्यवस्था का भी निर्देश किया।

उनका चारित्र्य या संयम इतना उज्ज्वल था कि उनके तात्कालिक विचार का विरोधी भी लोहा मानते थे। परिणाम स्वरूप चैत्यवासी जयदेवाचार्यादि विद्वानों ने आचारमूलक शैथिल्य का परित्याग कर सुविहित-मार्ग स्वीकार किया।

आचार्य श्रीजिनदत्तसूरिजी के बहुमुखी व्यक्तित्व पर दृष्टि केन्द्रित करने पर विदित होता है कि वे न केवल उच्च कोटि के नेतृत्वसम्पन्न व्यक्ति थे, अपितु संयमशील साधक होने के साथ-साथ शुद्ध साहित्यकार भी थे। आचार्यवर्य की अधिकतर कृतियां मानव जीवन को उच्चस्तर पर प्रतिष्ठापित करने से सम्बद्ध हैं। एवं उस समय के चरित्रहीन धर्मगुरुओं के प्रति विद्रोह की चिनगारी है। तथापि सामाजिक इतिहास की सामग्री कम नहीं है।

आचार्यश्री की साहित्यिक कृतियाँ संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषा में मिलती हैं जिनका न केवल धार्मिक दृष्टि से महत्व है अपितु भाषा-विज्ञान की दृष्टि से भी अध्ययन के तथ्य प्रस्तुत करते हैं। आचार्यवर्यश्री के साहित्य को अध्ययन को विशेष सुविधाओं के लिए स्तुतिपरक व उपदेशिक इस तरह दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। प्रथम भागमें उन कृतियों का समावेश है जो स्तुति, स्तोत्र साहित्य से संबद्ध हैं। इन कृतियों से परिलक्षित होता है कि आचार्यवर्य एक भावुक कलाकार थे। पूर्वजों के प्रति विश्वस्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावनाओं को लिये हुए थे, महान पुरुषों के प्रति उनके हृदय में अपार आदर और श्रद्धाभाव था। स्वयं उच्च-कोटि के विद्वान साहित्यशील एवं युगप्रवर्त्तक होते हुए भी इनकी विनम्रता स्तुति साहित्य में भलीभाँति परिलक्षित होती है। यों तो सर्वाधिष्ठायी स्तोत्र, सुगुरु पारतंत्र्य स्तोत्र, विघ्न-विनाशी स्तोत्र, श्रुतस्तव, अजितशांति स्तोत्र, पार्श्वनाथ मंत्र गर्भित स्तोत्र, महाप्रभावक स्तोत्र, चक्रेश्वरी स्तोत्र, सर्वजिन स्तुति आदि रचनाएं उपलब्ध हैं। उन सब में गणधर-सार्धशतक का स्थान बहुत ऊँचा है। भगवान महावीर से लेकर तत्काल तक के महान आचार्यों का गुणानुवाद इस कृतिमें कर स्वयं भी कालान्तर से उस कोटि में आ गये हैं। यद्यपि आचार्यवर्य की यह कृति बहुत बड़ी नहीं है पर उपयोगगिता और इतिहास की दृष्टि से विशेष महत्व की है।

साधक की वाणी ही मंत्र है। आचार्य श्रीजिनदत्त-सूरिजी रुद्रपल्ली जाते हुए एक गाँव में ठहरे। वहाँ एक अनुयायी गृहस्थको व्यन्तर देव के द्वारा उत्पीड़ित किया जाता था। गणधर-सप्ततिका एक टिप्पणी के रूप में लिखकर श्रावक को दी गई उससे न केवल वह पीड़ा से ही मुक्त हुआ, अपितु परिस्थितिजन्य आचार्यवर्य का यह ग्रन्थ भावी मानव समाज के लिए एक अवलंबन बन गया।

आचार्य श्री के सम्मुख एक समस्या तो वीतराग के मौलिक औपदेशिक परम्पराओं की सुरक्षा की थी तो दूसरी ओर विरोधियों द्वारा अज्ञानमूलक उपदेश के परिहार की भी। गुरुदेव के औपदेशिक साहित्य में तत्कालीन संघर्षों के बीज मिलते हैं।

सन्देहदोलावली प्राकृत की १५० गाथाओं में गुम्फित है। सम्यक्त्व प्राप्ति, सुगुरु व जैन दर्शन की उन्नति के लिए यह कृति उत्कर्ष मार्ग का प्रदर्शन करती है एवं तात्कालिक गृहस्थों को सुगुरुजनों के प्रति किस प्रकार व्यवहार करें, एवं पासत्थों के प्रति किस प्रकार रहें आदि बातें बड़े विस्तार के साथ कही गई हैं। इसका अपर नाम संशयपद प्रश्नोत्तर भी है। कहा जाता है कि भटिण्डा की एक श्राविका के सम्यक्त्व मूलक कुछ प्रश्न थे जिसके उत्तर में सूरिजी ने इस ग्रन्थ का प्रणयन किया। इससे पता चलता है कि उनकी अनुयायिनी श्राविकाएँ कितनी उच्चतम उत्तरों की अधिकारिणी थीं।

चैत्यवंदनकुलक तो प्रत्येक गृहस्थ के लिए विशेष पठनीय है। जिसमें श्रावकों के दैनिक कर्त्तव्य, साधुओं के प्रति भक्ति, आयतन आदि का विवेचन खाद्य-अखाद्यादि विषयों का संकेतात्मक उल्लेख है।

आचार्यवर्य के उपदेश धर्मरसायन, कालस्वरूपकुलक और चर्चरी ये तीनों ग्रन्थ अपभ्रंश में रचे हुए हैं। भाषा विज्ञान की दृष्टि से अध्ययन योग्य हैं ही। इन ग्रन्थों में उनका प्रकाण्ड पाण्डित्य शास्त्रीय अवगाहन व गंभीर चिन्तन परिलक्षित होता है।

उत्सूत्र पदोद्घाटनकुलक, उपदेशकुलक साधक और श्रावकों के आचारमूलक जीवन पर सुन्दर प्रकाश डालते हैं। इनके अतिरिक्त अवस्थाकुलक, विंशिका पद व्यवस्था, वाड़ीकुलक, शांतिपर्व विधि, आरात्रिकवृत्तानि और अध्यात्मगीतानि आदि कृतियाँ उपलब्ध हैं।

आचार्यवर्य भ्रमण करते हुए भारत विख्यात ऐतिहा-सिक नगर अजमेर पधारे। यहीं पर वि० सं० १२११ में आपका अवसान हुआ। अजमेर से वैसे भी आपका संबन्ध काफी रहा है क्योंकि आपके पट्टधर श्री जिनचन्द्रसूरिजी को दीक्षा भी सं० १२०३ फाल्गुन शुक्ला ३ को अजमेर में ही हुई थी।

जैन समाज के समस्त प्रभावशाली आचार्यों में इनका स्थान इतना उच्च रहा है एवं इतने स्तुति-स्तोत्र द्वारा श्रद्धालु व्यक्तियों ने इनके चरणों पर श्रद्धांजलि समर्पित की है जो सम्मान किसी भी महापुरुष को प्राप्त नहीं है। ये जैन समाज के हृदय सिंहासन पर इतने प्रतिष्ठित हैं कि इनके चरण व दादावाड़ी हजारों की संख्या में पायी जाती है। (अभिभाषण से संकलित)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org